International Recognized Double-Blind Peer Reviewed Multidisciplinary Research Journal
Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063 **Impact Factor : 3.4052 (UIF)**
Volume - 4 | Issue - 11 | May - 2015 **Available online at www.isrj.org**

भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में सामाजिक चेतना

वीरेन्द्र भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर शिवाजी कॉलेज,दिल्ली विश्वविद्यालय

Short Profile :

Virendra Bhardwaj is working as an Associate Professor Shivaji College of Delhi University.

Ikjk'k :

भवानीप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य की समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। तत्कालीन समाज के संदर्भों को विश्लेषित करने वाली मिश्र जी की कविताओं का फलक विस्तृत है। सामाजिक प्रतिबद्धताओं से जुड़ी इनकी कविताएं संवेदना के नए आयाम प्रस्तुत करती हैं। मिश्र जी की कविताओं में व्यापक अनुभूतियों का समावेश है जिससे सामाजिक विषयों के संदर्भ में पाठक के मन में एक नयी समझ विकसित होती है। इसका कारण यह है कि कवि अपने काव्य का सृजन समकालीन परिस्थितियों के संदर्भ में करता है। मानवीय पहलुओं का निर्वाह मिश्र जी के काव्य का आग्रह रहा है, इसलिए गांधीवादी प्रभाव को धारण किए हुए कविताओं में समाज के विकास और चेतना का स्वर उभरता हुआ दिखाई देता हैं। जन समुदाय को प्रभावित करने वाला मिश्र जी के रचनात्मक काव्य का महत्व सामाजिक रूप से समान है, यही वजह है कि इनकी कविताओं का विश्लेषण समाज के सभी संदर्भों में ही किया जा सकता है। भवानीप्रसाद मिश्र के सृजन कार्य पर भारतीय कवियों कालिदास, रवीन्द्रनाथ के अलावा वर्डस्वर्थ, शैली, ब्राउनिंग आदि की सौंदर्य चेतना का प्रभाव देखा जा सकता है, परन्तु मिश्र जी अपनी सौंदर्य चेतना में इससे अलगाव रखते हैं, इसका कारण कवि के लिए समसामयिक तथ्यों की प्रस्तुति ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह कविता में सामाजिक यथार्थ का नवीन प्रयोग है जिसमें कविता समाज के साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है।

Article Indexed in :
DOAJ Google Scholar DRJI
BASE EBSCO Open J-Gate

मिश्र जी अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज के विविध रूपों की प्रस्तुति करतें हैं जिसके कारण इनमें यथार्थ की उपस्थिति स्वाभाविक है। यह इनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का ही प्रतिफलन है कि साधारण सी दिखाई देने वाली कविताओं को मिश्र जी ने कितनी असाधारण शैली में गढ़ा है। सामाजिक विकास के नियामकों को किस तरह से विश्लेषित करके संप्रेषित किया जाना चाहिए इसे बड़ी सहजता के साथ वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं।

मिश्र जी की रचनाओं में जिस सामाजिक प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं वह भारतीय सांस्कृतिक संदर्भों द्वारा निर्मित है। इसे प्रकृति का शाश्वत नियम माना गया है जिसे आदमी अनुकरण करके सामाजिक बदलावों की जमीन तैयार करता है। ''साहित्य और कला में मात्र वही प्रतिबिम्बित नहीं होता जो सामाजिक जीवन में उतरता है वरन् साहित्य और कलाओं में उसके भी दर्शन होते हैं जो सतह के नीचे अपनी अशेष संभावनाओं को लिए आर्थिकसामाजिक विकास को नए मोड़ देने के लिए तत्पर होता- है।''[1] यदि मिश्र जी का रचनात्मक परिदृश्य देखा जाये तो वे कहीं भी कलावाद के पोषक दिखाई नहीं देते हैं बल्कि समाज और मनुष्य के सम्बन्धो के सूक्ष्म भावों का विश्लेषण करते नजर आते हैं। यह रचना का व्यावहारिक रूप है जो पाठक पर संवेदना का गहरा प्रभाव डालता है। मिश्र जी निरपेक्ष भाव से समाज को गतिशील देखना पसंद करते हैं, उनके अनुसार प्रगतिशीलता का कोई सिद्धान्त नहीं होता है उसे समाज में उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से ही गति देना होता है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने इस सम्बन्ध में लिखा है -'प्रगतिशीलता सिर्फ कटे हुए वर्तमान की नहीं बल्कि जीवन सातत्य की अवधारणा है। वह किसी विशिष्ट बिन्दु पर ही प्रगतिशील नहीं है बल्कि इतिहास के हर दौर में तत्कालीन गतिरोध के विरूद्ध संघर्षरत् शक्तियों की भूमिका में निहित है।[2]

मिश्र जी यहां पर गांधीवादी दर्शन से प्रेरित दिखाई देते हैं जिसमें बताया जाता है कि उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तम साधनों के उपयोग से ही हो सकती है और इन्हें समाज में ही खोजना होता है, यह स्वदेशी अवधारणा का विशिष्ट रूप है-

इसे वर्ग संघर्ष से पैदा करना
निश्चय ही गति-हत होना है
दिख सकती है प्रगति किसी को कुछ दिन इसमें
किन्तु प्रकारान्तर से तो यह मृतवत होना है
प्रगति साध्य-साधन का सामंजस्य यहीं तुमने बतलाया
हमनें बहुत अधूरे ढंग से
पालन किया किन्तु फिर भी जो पाया
कितना पाया

- गांधी पंचशती, पृ. 83

भवानीप्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'गीतफरोश' समाज के परिवर्तित सांस्कृतिक रूपों का आख्यान है। यह काव्य-संग्रह अपनी सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से मानव कर्म को प्रस्तुति देता है। सैद्धान्तिक रूप में समाज की प्रगति एवं विकास को वर्ग संघर्ष, शोषक और शोषित के पारम्परिक ढाँचे में विश्लेषित किया जाता है, परन्तु मिश्र जी इसे सामाजिक सन्दर्भों और मानवीय पहलुओं में देखते हैं। मिश्र जी बताना चाहते हैं कि समाज का विकास आदमी के चिन्तन और विकास का हिस्सा है। प्रस्तुत काव्य संग्रह अपनी अभिव्यक्ति में एक विनोदपूर्ण माहौल के माध्यम से इन तमाम पहलुओं का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं-

असहनीय है यह कि काल से हार रहे धरती के बेटे-
सोचें भर अपना अभाग कर आंख बन्द लेटे-लेटे
अभी काल रथ अपने आगे, इसको पीछे छोड़े तब है-
जैसे भी हम मुड़े, कि इसको वैसा मोड़े, तब है।

- गीतफरोश

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो समाज की प्रगति पूंजीवादी व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई है और पारम्परिक अवधारणा आज के सन्दर्भ में अनेक विरोधाभासों को जन्म देती है। कवि इस बात को भली-भाँति जानता है कि यह एक बेबसी का माहौल है और सभी चिन्तन, दृष्टि, सिद्धान्त, विचार महज उत्पाद बन कर रह गये हैं। 'कवि को इस बात का गहरा अहसास और समझ है कि एक नयी समाज व्यवस्था (पूंजीवाद व्यवस्था) उत्पन्न हो रही है और वह व्यवस्था बाजार की व्यवस्था है जिसमें चीजें तो बिकती हैं, मनुष्य के श्रम के साथ उसका प्रेम, मूल्य और उसकी कला भी बिकती है।'[3] इस कथन को कवि निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त करते हैं-

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूं
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं
- - -
जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर बाद-बाद में अक्ल लगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान।

- गीतफरोश, पृ. 166

यहाँ पर मिश्र जी ने पूंजीवादी व्यवस्था के कारण कला के विज्ञापन शैली में प्रस्तुत करने पर करारा व्यंग्य किया है, परन्तु व्यवस्था इसी को प्रगति और विकास के रूप में देखती है। मिश्र जी इस बात को महसूस करते हैं कि रचनात्मकता की स्वाभाविकता को बाजार नष्ट कर देता है। प्रगतिशीलता का ज्यादा सम्बन्ध सांस्कृतिक विकास से है ऐसे में एक समाज तभी प्रगतिशील बन सकता है जब वह सांस्कृतिक रूप से मजबूत होगा और यह संभावना तभी साकार होगी जब समाज के सांस्कृतिक उपकरणों को कला की विशुद्धता के साथ प्रस्तुत किया जा सकेगा।

सामाजिक विश्लेषण के सम्बन्ध में मिश्र जी की दृष्टि सूक्ष्मता के साथ आगे बढ़ती दिखाई देती है। मनुष्य का सामाजिक व्यवहार प्रगतिशीलता का सूचक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे और विस्तृत रूप में समझा जा सकता है। एक ही समाज में व्यवहारों की विविधता पायी जाती है और उन सबका अन्तर्सम्बन्ध भी स्थायी होता है ऐसे में विकासमूलक आधारों पर इन सबका प्रभाव दिखाई देना स्वाभाविक है। सामाजिक यथार्थवाद का दृष्टिकोण ''जीवन वास्तविकता को गतिहीन और एकांगी नहीं, बल्कि बहुमुखी, वैविध्यपूर्ण, नानारूपात्मक और विकासमान मानता है।''(4) व्यवहारों के ये सूक्ष्म भाव मिश्र जी की कविता के विषय बने हैं। 'सन्नाटा' नामक कविता में एक पागल द्वारा गाये गीत से रानी के मन में सामाजिक जुड़ाव का भाव पैदा होता है, परन्तु राजा को यह मंजूर नहीं होता लेकिन रानी की समाज के प्रति करूणा, चीत्कार में तब्दील हो जाती है और राजा, रानी को शूली पर टांग देता है, परन्तु अन्तिम समय में भी रानी के मन में सामाजिक संवेदना का यह गान प्रतिध्वनित होता रहता है-

भरा क्रोध में आया औ (राजा) वह' रानी से -

उसने मांगा इन सांझों का लेखा।

रानी बोली, पागल को जरा बुला दो,

मैं पागल हूं, राजा, तुम मुझे भुला दो,

मैं बहुत दिनों से जाग रही हूँ राजा।

बंसी बजवाकर मुझको जरा सुला दो।

दूसरा सप्तक -, सन्नाटा, पृ .14

मिश्र जी की अभिव्यक्ति की यह विशेषता है कि वे सीधे सीधे कथन को प्रस्तुत नहीं करते बल्कि उसमें व्यंजनात्मक प्रभाव पैदा करते हैं। व्यंजनात्मक गुण इनकी कविताओं का परिचायक है। उपरोक्त पंक्तियों में भी व्यंजना के माध्यम से बताया गया है कि समाज में हर नागरिक का महत्व होता है और सत्ता का आभास और प्रभाव उसके मन पर विद्यमान रहता है परन्तु सत्ता के केन्द्र को आलोचना स्वीकार नहीं होती, इसी कारण से निरंकुश शासन के दबाव में अलक्षित और अज्ञात जीवन नष्ट हो जाते हैं जो कि सामाजिक प्रगति के लिए बाधक हैं।

भारत एक ग्राम प्रधान देश है जब तक गाँवों को आर्थिक रूप से समृद्ध नहीं बनाया जायेगा तब तक विकास की बात करना बेमानी होगा। गांधी जी ने भी विकास को गाँव के लघुकुटीर उद्योग के साथ जोड़ कर - देखा था। इससे न केवल ग्रामीण समाज का जीवन सम्पन्न होगा बल्कि उनके अन्दर आर्थिक सुरक्षा का भाव

भी पैदा होगा। समाज में आज भी अपशक्तियाँ और शोषक वृतियाँ मौजूद हैं जो विकास के मार्ग में बाधक हैं। विकास के संसाधनोंका नष्ट होना इन्ही वृतियों की देन है जिससे आज भी गाँव का पिछड़ापन दिखाई देता है और लूटपाट की प्रवृति में लगातार वृद्धि हो रही है -

गाँव इसमें झोंपड़ी है घर नहीं है
झोंपड़ी के फटकियाँ हैं दर नहीं है
धूल उठती है धुएँ में दम घुटा है
'मानवों के हाथ से मानव लुटा है

-गीतफरोश, पृ. 34

कवि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जीवन की भयावह त्रासदी को चित्रितकिया है, इस हताशा और निराशा से भरे वातावरण में वे विकास के जीवंत तत्वों को खोजते हैं। कवि की दृष्टि का यह सकारात्मक पक्ष है जो असामाजिक कारकों का क्षय करके मानव जीवन की शाश्वता के संरक्षण पर बल देता है -

प्रतीक हों, अगर ये
किसी सार्वजनिकता के
तो प्राणपण से माँगता हूँ
मैं इनकी क्षणिकता
टाँगता हूँ अपने को शूली पर
कि वे ये प्रतीक
मेरी अवस्था के
सार्वजनिकता के प्रतीक
न बने।

- बुनी हुई रस्सी, पृ. 137

भवानीप्रसाद मिश्र सामाजिक चेतना को सम्पूर्णता में देखने के आग्रही हैं, इसलिए वे सांस्कृतिक महत्व पर बल दते हैं। सहजता, सादगी, संयम, भ्रातृभाव, परोपकार आदि भारतीय मानस के सांस्कृतिक गुण हैं परन्तु समाज में उभरते तकनीकी रूपों ने आदमी के अन्दर कृत्रिम व्यवहार को पैदा कर दिया है। यह कृत्रिमता असामान्य स्थितियों को पैदा करती है जो कि समाज के लिए घातक है। अभिव्यक्ति और प्रयोग के लिए आज ऐसी भाषा की आवश्यकता है जो विशुद्ध हो तभी उसका हस्तान्तरण किसी राष्ट्र के लिए सार्थक सिद्ध हो सकता है। कृत्रिम व्यवहार सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने में अक्षम होता है इसलिए हमें भाषा के वे उपकरण गढ़ने होंगे जो कृत्रिमता को नष्ट करके स्वाभाविकता का निर्माण करते हैं तभी हमारे सांस्कृतिक गुणों का संरक्षण हो पायेगा-

जीभ की जरूरत नहीं है
क्योंकि कहकर या बोलकर
मन की बातें जाहिर करने की

सूरत नहीं है.....
बेचैनी घोलेंगी
हमारी आँखे
वातावरण में.....

,शरीर) - कविता, फसलें और फूल(

मिश्र जी सामाजिक प्रयासों में विश्वास करते हैं इसलिए विश्वास की संकल्पना कोजीवन्त रखना चाहते हैं। समाज निर्माण की प्रतिबद्धता के प्रति वे निष्ठावान हैं जिसके लिए वे सामाजिक मूल्यों के संरक्षण पर बल देते हैं। समाज में कभी भी ऐसी शक्तियाँ नहीं पनपनी चाहिएं जो सांस्कृतिक मूल्यों का पतन करती हों। गांधी जी के सत्य, अंहिसा जैसे मूल्यों की स्थापना करके ही हम विकास के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं-

बसे वह प्यार की बस्ती
कि जिसमें हर किसी का दुख मेरा शूल हो जाए
मुझे तिरशूल भी मारे कोई यदि दूर करने में उसे
तो फूल हो जाये।

- गांधी पंचशती, पृ. 43

भवानीप्रसाद मिश्र ने अपनी कविताओं में क्षयी और ह्रासोन्मुख कल्पनाओं का दमन करके युगीन चेतना को उभारा है। यह इनकी रचनात्मक प्रवृति का प्राथमिक गुण है, जहाँ वे सामाजिक जरूरतों पर बल देते हैं। सामाजिक संसक्ति का भाव आदमी में मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था और संकल्प को और दृढ़ता प्रदान करता है। राष्ट्र निर्माण में योगदान के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। आशावान और उसकी संकल्पना शक्ति को समर्थ और सशक्त भाव से ही पैदा किया जा सकता है, जिसे कवि प्रत्येक नागरिक के व्यक्तित्व में इस गुण को देखना चाहता है-

पाँव हमारे बलशाली हैं
अगर जरूरत पड़ ही जाए
तो पँख वालों को हम पकड़ सकतें हैं
पाल सकते हैं
उनकी उड़ानों को अपनी जरूरत में ढाल सकते हैं

- चकित है दुख, पृ. 88

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि कवि भवानीप्रसाद मिश्र अपने काव्य में सामाजिक रूपों का मानवीय संदर्भों में विश्लेषणकरते हैं। वे अभिव्यक्ति के मानकों को दरकिनार करके सामाजिक तथ्यों की यथार्थ प्रस्तुति करते हैं। मिश्र जी के लिए समाज के विकास की अवधारणा व्यक्ति की मूलभूत जरूरतों की पूर्ति में समाहित है। इसी की चर्चा वे अपनी रचनाओं में करतें हैं।

संदर्भ -

1. शिवकुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, पृ .343.

2. प्रभाकर श्रोत्रिय, हिन्दी कविता की प्रगतिशीलता, पृ .36.

3. डॉस्मिता मिश्र ., गीतफरोशः संवेदना और शिल्प, पृ .37.

4. शिवदान सिंह चैहान, साहित्य की समस्याएँ, पृ .93.